P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ0 रामविलास शर्मा के समीक्षा तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन

उमा श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय,
डी0 एल0 डब्ल्यू0,
वाराणसी, उ0प्र0, भारत

सारांश

हिन्दी समीक्षा का प्रगतिवादी अंकुर भारतेन्दु युग में प्रस्फुटित हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे पल्लवित तथा डॉ0 राम विलास शर्मा ने इसे परिपुष्ट करने का कार्य किया। हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ आ0 शुक्ल ने प्राचीन रसवादी धारणा को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित कर एक नया रूप प्रदान किया। जहॉ तक डॉ0 राम विलास शर्मा की बात है वे प्रगतिशील आलोचना के अग्रदूत हैं उन्होंने परम्परा का मूल्यांकन वर्तमान संघर्षों की चुनौतियों और भविष्य की ओर उन्मुख दृष्टि से किया।

आचार्य शुक्ल 'रस' को काव्य का अनिवार्य अंग मानते हैं तो डॉ0 शर्मा जन–जीवन का चित्रण और लोकमानस के उदात्तीकरण को साहित्य के लिए महत्वपूर्ण माना। आचार्य शुक्ल अभिधा काव्य द्वारा विवेचित साहित्य को प्रमुखता देते हैं वे काल्पनिक चित्रण के स्थान पर वास्तविक चित्रण को महत्व देते हैं डॉ0 शर्मा भी इसी मत के समर्थक हैं। डॉ0 शर्मा ने हिन्दी साहित्य की विराट परम्परा का अत्यन्त सुसंगत मूल्यांकन करते हुए हमें प्रगतिशील विरासत से परिचित कराया तथा शोषित एवं पीड़ित मानवता को जातीय और संगठित मनोबल प्रदान किया। दोनों ही समीक्षको ने अपने–अपने ढंग से समाज को उन्नत एवं सशक्त बनाने का प्रयास किया।

प्रस्तुत शोध पत्र में आचार्य शुक्ल एवं डॉ0 शर्मा के समीक्षा तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : हिन्दी समीक्षा, युग प्रवर्तक, साहित्यशास्त्र, मार्क्सवाद, अलौकिक, उदात्तीकरण, द्वन्द्वात्मक एकता, रसानुभूति, भाव–योग, पारमार्थिक, प्रतिबिम्ब, असहयोग आन्दोलन, वस्तुवादी, लोकोन्मुख दर्शन, राष्ट्रीय जागरण, जनवादी परम्परा, पूँजीवाद।

प्रस्तावना

आधुनिक काल के पूर्व हिन्दी आलोचना का आधार संस्कृत साहित्यशास्त्र में निहित है। गुण और परिमाण की दृष्टि से आलोचना निश्चित रूप से हिन्दी–साहित्य का सबसे समृद्ध अंग है भारतीय साहित्य चिन्तन की मौलिक परम्परा जो पंडित राज जगन्नाथ के बाद लुप्त हो गयी थी आचार्य शुक्ल में वह पुनरूजीवित हो गयी। आलोचना वह कसौटी है जिसके द्वारा रचना का मूल्यांकन किया जाता है वह उन विशेषताओं का उल्लेख करती है जो पाठकों को आनन्द प्रदान करती है। काव्य शास्त्र के रूप में इसकी परम्परा पहले से दिखाई देती है, पर रचना शास्त्र से जोड़ने वाली प्रक्रिया के रूप में आलोचना का विकास आधुनिक काल में ही होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में आचार्य शुक्ल एवं डॉ0 शर्मा के समीक्षा तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

विषय विस्तार

हिन्दी समीक्षा आधुनिकता की देन है। आधुनिक काल से पूर्व समीक्षा का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह प्रमुखतया संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृत्ति है। आधुनिक गद्य साहित्य के साथ ही हिन्दी समीक्षा का उदय भी भारतेन्दु युग में हुआ। हिन्दी समीक्षा को व्यवस्थित, गाम्भीर्य एवं समृद्ध करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। शुक्ल जी के आगमन से हिन्दी आलोचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। आलोचना के क्षेत्र में वे युग–प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। जहॉ तक डॉ0 रामविलास शर्मा की बात है वे प्रगतिशील आलोचना के अग्रदूत और हिन्दी के प्रतिनिधि समालोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

इस लेख के माध्यम से दोनों समालोचकों की समीक्षा दृष्टियों का मूल्यांकन करना ही मुख्य ध्येय है। आचार्य शुक्ल को निश्चित रूप से हिन्दी

समीक्षा का शिखर व्यक्तित्व माना जाता है वे युग–प्रवर्तक व्यक्ति हैं क्योंकि हिन्दी आलोचना पहली बार उनके यहॉ अपने आलोचना नाम को चरितार्थ करती है, मात्र गुण–दोष कथन अथवा साहित्य शास्त्र की रूढ़ियों से छूटकर आलोचना रचना की साहित्यिक गुणवत्ता को ही उजागर नहीं करती बल्कि उसके सामाजिक महत्व का आकलन करती है। आचार्य शुक्ल के कार्य को आगे बढ़ाते हुए उसे गुणात्मक परिणति तक पहुॅचाने का कार्य डॉ0 रामविलास शर्मा ने किया। डॉ0 शर्मा की समीक्षा में प्राचीन काल से नवीन युग तक की सर्जना का पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन है। डॉ शर्मा की आलोचना शुक्ल जी की भॉति किन्तु उससे आगे बढ़कर परम्परा तथा आधुनिक रचनाशीलता के बीच नये और मजबूत सम्बन्ध सेतुओं का खुलासा करती है और इस प्रकार समूची सर्जनाशीलता को उसकी जीवंत उपलब्धियों के आधार पर एक निरन्तरता में पहचानती हुई प्रस्तुत करती है। यह बात शुक्ल जी में भी थी, परन्तु डॉ0 शर्मा मार्क्सवाद की इतिहास दृष्टि के आलोक में उसे एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं तथा ऐसे अनेक रिक्त स्थानों को भरते हैं जो या तो शुक्ल जी तथा दूसरों से छूट गये थे या जिन्हें शुक्ल जी ने सभी संदर्भों में पहचान नहीं सके थे।

आचार्य शुक्ल 'रस' को काव्य का अनिवार्य अंग मानते हुए उसकी सत्ता को लोकोत्तर उसके आस्वादन को अनिर्वचनीय और उसके आनन्द को अलौकिक मानते हैं। वे लोक हृदय में लीन होने को रस दशा मानते हैं और लोक हृदय की परख करने वाले को श्रेष्ठ कवि बताते हैं। डॉ0 शर्मा की समीक्षा शुक्ल जी के समीक्षा सिद्धान्तों को सुस्पष्ट करती है, ''लोक हृदय, लोक मंगल या लोक हित को दरकिनार करके साहित्यकार आगे नहीं बढ़ सकता। वह किसी भी तरह के भाव प्रकट करके अपना पीछा नहीं छुड़ा सकता। प्राचीन रसवादियों से शुक्ल जी का यह महत्वपूर्ण मतभेद है।'' [1] डॉ0 शर्मा का मानना है कि शुक्ल जी भावों को उसके आधार से अलग नहीं देखते, वे साहित्य में उसके आधार के चित्रण को ही सबसे महत्वपूर्ण समझते हैं। डॉ0 शर्मा की अपनी स्थापना है कि जन जीवन का चित्रण और लोक मानस का उदात्तीकरण साहित्य का ठोस आधार होता है।

रसवादी आचार्य होने पर भी शुक्ल जी की मान्यताएं संस्कृत काव्यशास्त्रियों के अनुरूप नहीं है उनकी मान्यताएं मार्क्सवादी समीक्षकों से मिलती जुलती हैं। आचार्य शुक्ल ने आनन्द को 'गन्तव्य' न मानकर मात्र 'मार्ग' माना है। डॉ0 शर्मा ने शुक्ल जी के इस कथन का समर्थन करते हुए कहा कि ''साहित्य से आनन्द मिलता है यह अनुभव सिद्ध बात है, लेकिन साहित्यशास्त्र यहॉ समाप्त नहीं होता बल्कि यहीं से उसका श्री गणेश होता है।'' [2] इसी क्रम में डॉ0 शर्मा ने काव्यजनित आनन्द का सम्बन्ध उपयोगिता से जोड़ते हुए उनकी द्वन्दात्मक एकता में ही साहित्य एवं कला की सृष्टि मानी है। उन्होंने लिखा है ''साहित्य शास्त्र की उपयोगिता यह होगी कि साहित्य और जीवन के सम्बन्ध की वास्तविकता प्रकट कर दे, जनता के लिए अहितकर साहित्य–शास्त्र से भ्रम का पर्दा उठा दे।'' [3] कहने का आशय यह है कि आचार्य शुक्ल ने इसकी सार्थकता सामाजिक कर्मों की उत्तेजना में मानी है तथा रस एवं आनन्द को अपने में साध्य न मानकर 'कर्ममय जीवन की प्रेरणा' में ही उसका रसत्व एवं आनन्दत्व देखा है। इस सम्बन्ध में डॉ0 रामविलास शर्मा का कहना है कि काव्यजनित रस या आनन्द से पाठक के कर्ममय जीवन पर किस तरह का प्रभाव पड़ता है, किस तरह के संस्कार उसके मन पर बनते बिगड़ते हैं, ये समस्यायें साहित्य शास्त्र की ही समस्यायें हैं।

आचार्य शुक्ल साहित्य के भावों और जीवन के भावों में अन्तर नहीं मानते हैं 'रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने लिखा है कि, ''रसानुभूति प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक कोई अंतर्वृत्ति नहीं है बल्कि उसी का उदात्त रूप है।'' यही कारण है कि वे भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य में ही सच्ची रसानुभूति मानते हैं। डॉ0 शर्मा जी भी शुक्ल जी की इन मान्यताओं से सहमत हैं जिसके फलस्वरूप उन्होंने शुक्ल जी की रस सम्बन्धी विचारधारा की प्रशंसा करते हुए कहा कि शुक्ल जी ने पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के भाववादी साहित्य शास्त्रियों की धारणाओं को निर्मूल किया कि साहित्य का उद्देश्य केवल आनन्द देना है, उसकी अनुभूति जीवन की अनुभूति से मूलतः भिन्न होती है। कल्पना संसार के रूपों से परे अपना नया संसार रचती है। उन्होंने रस को काव्य की आत्मा माना लेकिन लोक हृदय में लीन होने को रस–दशा कहा, ज्ञान को वास्तविक जगत की सत्ता पर निर्भर बताया, साहित्यशास्त्र से अवैज्ञानिक रहस्यवादी कल्पनाओं को बाहर किया, काव्य के भाव–योग की परिणति लौकिक जीवन के कर्मयोग में की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अभिधा काव्य के माध्यम से विवेचित साहित्य को उत्तम मानते हैं। जगत् के वास्तविक दृश्य, जीवन की वास्तविक दशाएं, भावों की व्यंजना में वास्तविकता का आधार ही शुक्ल जी की आलोचना के मूल सूत्र हैं। संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण मूलतः वस्तुवादी है इसीलिए शुक्ल जी को हिन्दी आलोचना में यथार्थवाद का संस्थापक भी माना जाता है। शुक्ल जी का मानना है कि कल्पना की सत्ता पारमार्थिक नहीं है। इंग्लैण्ड के रहस्यवादी कवि विलियम ब्लेक ने कल्पना के लोक को नित्य और असीम माना है। आचार्य शुक्ल ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि, ''यह तो प्रत्यक्ष बात है कि कल्पना के भीतर जो कुछ रहता है या आता है वह प्रकृति के ही विशाल क्षेत्र से प्राप्त होता है। अतः जब तक हम किसी वाद का सहारा न लें तब तक कहेंगे कि कल्पना में आये हुए रूप ही प्रकृति के नाना रूपों के प्रतिबिम्ब हैं, प्रकृति के रूप कल्पना के प्रतिबिम्ब नहीं हैं।[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि शुक्ल जी का काल्पनिक चित्रण के स्थान पर वास्तविक चित्रण को अधिक महत्व देते हैं।

आचार्य शुक्ल की यथार्थवादी मान्यता के समर्थक डॉ शर्मा भी हैं उनके साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा अत्यधिक दृष्टिगत होती है। प्रेमचन्द एवं निराला पर लिखी गयी आलोचना उनके इस विचारधारा को परिपुष्ट करती है। डॉ0 शर्मा ने प्रेमचन्द के उपन्यासों के आधार पर उन्हें एक यथार्थवादी कलाकार के रूप में प्रस्तुत किया। डॅ0 शर्मा की मान्यता है कि कला की

सफलता जीवन के यथार्थ चित्रण में ही है। आदर्शवाद कल्पना पर आधारित होता है अतः उसके द्वारा साहित्य का विशेष उपकार न होगा। यथार्थवादी साहित्य में जीवन का सहज स्वाभाविक एवं पूर्ण चित्रण होना चाहिए अन्यथा वह समाज को अधोगति की ओर ले जाता है। प्रेमचन्द के साहित्य का विवेचन करते हुए डॉ0 शर्मा ने बतलाया कि उनकी कला के प्रभावशाली चित्र वे ही हैं, जहॉ वे यथार्थ जीवन की सही तस्वीर पेश करते हैं। इस स्वाभाविक भूमि को छोड़कर जब वे कल्पना के आधार पर समस्या का आदर्शवादी हल पेश करते हैं, वहीं उनकी कला का जादू उड़ जाता है। आगे चलकर वैसे ही प्रेमचन्द अपनी इस कमजोरी को पहचान लेते हैं, वे यथार्थ के ऊपर से आदर्श का आवरण उतार फेंक देते हैं– विशेषकर अपनी अन्तिम रचनाओं में। वैसे इसके बहुत पहले की रचना 'निर्मला' में भी कोई आदर्श या कल्पित समाधान नहीं दिखाई पड़ता है। यहॉ कथा लेखन में प्रेमचन्द ने यथार्थवाद को पूरी तरह निबाहा है। डॉ0 शर्मा ने लिखा है कि, ''यह उपन्यास असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद ही लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिन्दी लेखक कल्पित समाधानों से संतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिए आगे बढ़ रहे थे।'' [5] डॉ0 शर्मा द्वारा किये गये प्रेमचन्द के समग्र मूल्यांकन से यह ज्ञात होता है कि डॉ0 शर्मा ने यथार्थवाद की एक नयी कोटि क्रांतिकारी यथार्थवाद का सूत्रपात किया है, वह मार्क्सवादी आलोचना और सौन्दर्यशास्त्र के शास्त्रागार में एक नया अस्त्र है, एक नया और सर्जनात्मक और क्रांतिकारी योगदान है।

डॉ0 शर्मा एवं आचार्य शुक्ल दोनों आलोचकों के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि दोनों ही समीक्षक साहित्य में यथार्थ चित्रण को अत्यंत महत्व प्रदान करते हैं। कल्पना और आदर्श के माध्यम से विवेचित साहित्य को वे उत्तम नहीं मानते हैं।

साहित्य के प्रति शुक्ल जी का दृष्टिकोण मूलतः वस्तुवादी है। उनके समीक्षा–सिद्धान्त वस्तुवाद एवं व्यापक लोक–धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित है। उन्होंने युगानुरूप चिन्तन एवं वैज्ञानिक तर्क–दृष्टि को अपनी समीक्षा में प्रधानता दी है। साथ ही साहित्य को जहॉ भी मानव कल्याण से विरत देखा है, वहीं उन्होंने आक्षेप किया है। रीतिकालीन चमत्कारी कवियों के अतिरिक्त सिद्धों–नाथ पन्थियों आदि को भी उन्होंने लोक विरोधी ठहराया है। लोक के साथ तादात्म्य, आत्मसत्ता को लोकसत्ता में विलीन करना, लोक संग्रह, लोक मंगल ही वह केन्द्र विन्दु है जिसके चारों ओर उनकी आलोचना घूमती है। शुक्ल जी तो कविता का उद्देश्य ही हृदय को लोक सामान्य की भाव भूमि पर पहुॅचा देना मानते हैं।

आचार्य शुक्ल ने लोकवादी दृष्टि के आधार पर ही भक्ति–आन्दोलन का मूल्यांकन किया है। साथ ही, उन्होंने संत साहित्य से भक्त–साहित्य को उत्तरोत्तर उत्कर्ष की ओर अग्रसर माना है। आचार्य शुक्ल ने तुलसी एवं सूर दोनों कवियों का मूल्यांकन किया है और तुलसी को सूर से श्रेष्ठ माना है। इनके मूल में उनका लोकपरक काव्यादर्श ही प्रधान है। शुक्ल जी साहित्य को लोक जीवन के संस्कारों से अलग नहीं देखते हैं। उनके अनुसार किसी देश की काव्यधारा के मूल में प्राकृतिक स्वरूप का परिचय हमें चिरकाल से चले आते हुए लोक गीतों में मिल सकता है। भक्ति काव्य विशेषतया 'सूरसागर' को उन्होंने किसी चली आती हई काव्य–परम्परा का स्वाभाविक परिणाम माना है। सूर की भक्ति–भावना एवं वात्सल्य में गहरी तन्मयता स्वीकार करके भी शुक्ल जी तुलसी को सर्वोपरि स्थान देते हैं क्योंकि उन्होंने मनुष्य जीवन की बहुत अधिक परिस्थितियों का सन्निवेश किया है।

डॉ0 रामविलास शर्मा की भी बोध भूमि एक सामाजिक मनुष्य और साधारण जन की है। वे एक धुरन्धर विद्वान के बजाय एक सामूहिक जन और सामाजिक मनुष्य के रूप में आलोचना की नई दिशा को खोलते हैं। तुलसीदास आचार्य शुक्ल के प्रिय कवि तो थे ही वे डॉ0 शर्मा के भी अत्यन्त प्रिय थे। तुलसी का काव्य लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। तुलसीदास जी के काव्य की विशेषताओं को बताते हुए डॉ0 शर्मा कहते हैं कि उनका काव्य जीवन से विमुख नहीं है, वह लोकोन्मुख है, वह जीवन को सुखी एवं सार्थक बनाने में है। तुलसी ने अपने एवं दूसरों के दुःख का जो यथार्थ वर्णन किया है उसका कारण भी उनका लोकोन्मुख दर्शन ही है। तुलसी को मानव आत्मा का एक कुशल शिल्पी साबित करते हुए वे बताते हैं कि तुलसी ने दुःख का ही नहीं, संसार के अनेक व्यापारों, मानव जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण किया है।

डॉ0 शर्मा के शब्दों में '' तुलसी को निकाल कर हिन्दी साहित्य की परम्परा से जोड़ना असम्भव है। इस परम्परा में जो मूल्यवान है, जो कुछ महत्वपूर्ण है, जो कुछ सदा के लिए संग्रह करने योग्य है, तुलसी में सुरक्षित है।''[6] डॉ0 शर्मा ने जिस समय साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया वह समय गॉधी एवं नेहरू का युग था। उस काल में पूॅजीवाद की व्यक्ति चेतना का आत्म निर्वासन वाला फूहड़ स्वरूप तथा राष्ट्रीय जागरण का एकाधिकार पूॅजीवाला महादैत्य, ये दोनों नहीं उभरे थे। छायावाद के उत्कर्ष के साथ ही पूॅजीवाद, आर्थिक शोषण और व्यक्तिवादी अहंकार उभर चुके थे जिसका परिणाम 'राम की शक्ति पूजा' एवं 'गोदान' आदि हुए। वह युग रचना और आलोचना में रस और अलंकार के दो रथ चक्रों पर नहीं चल सकता था बल्कि उसकी आवश्यकता व्यक्तिगत चेतना और राष्ट्रीय जागरण थी। डॉ0 शर्मा ने रस एवं अलंकार की दृष्टि से रचे गये साहित्य को समाज हितैषी नहीं माना। उन्होंने 'जन' एवं 'लोक' के माध्यम से साहित्य की रचना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समीक्षा के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल एवं डॉ0 शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों ही आलोचकों ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के द्वारा हिन्दी आलोचना को सुदृढ़ बनाया। डॉ0 रामविलास शर्मा का कार्य अपनी सारगर्भिता के कारण अत्यन्त तेजस्वी रूप में सामने आता है। वे चिन्तन की मार्क्सवादी जमीन पर खड़े होकर भी हिन्दी आलोचना की प्रगतिशील जनवादी परम्परा से अपना रिश्ता कायम करते हैं तथा आचार्य शुक्ल के कार्य को आगे बढ़ाते हैं।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

निष्कर्ष

आचार्य शुक्ल एवं डॉ0 राम विलास शर्मा के समीक्षा तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आचार्य शुक्ल द्वारा आधुनिक हिन्दी आलोचना के सम्पूर्ण अंगों का विकास किया गया। उनके युग को समीक्षा–साहित्य का विकास काल कहा गया क्योंकि उन्होंने हर रूप में आलोचना को आधुनिक बनाया। हिन्दी के प्रौढ़ एवं गम्भीर समीक्षक के रूप में उनकी अपनी अलग पहचान है। डॉ0 राम विलास शर्मा ऐसे समीक्षक हैं, जिन्होंने परम्परा के भीतर से मूल्य सापेक्ष पद्धति का विकास किया। वे व्यवस्थित वस्तुवादी सिद्धान्तकार की तरह उभरे तथा अपनी चिन्तन पद्धति द्वारा भारतीय इतिहास और संस्कृति की गतिशील प्रकृति को हासिल किया तथा हिन्दी भाषी क्षेत्र की जनता को उनकी खोयी हुई रचनात्मक अस्मिता वापस दिलाई। हिन्दी साहित्य की उन्नति में दोनों ही समीक्षको का योगदान अविस्मरणीय है। हम इन दोनों साहित्यकारों के सदैव ऋणी रहेगें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ0 राम विलास शर्मा, 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' प्रथम संस्करण (1973) विनोद पुस्तक मन्दिर हास्पिटल रोड़, आगरा। पृष्ठ सं0 05*
2. *डॉ0 राम विलास शर्मा, 'लोक जीवन और साहित्य' प्रथम संस्करण (1955) विनोद पुस्तक मन्दिर हास्पिटल रोड आगरा। पृष्ठ सं0 07*
3. *डॉ0 राम विलास शर्मा, 'लोक जीवन और साहित्य' प्रथम संस्करण (1955) विनोद पुस्तक मन्दिर हास्पिटल रोड, आगरा। पृष्ठ संख्या 08*
4. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'चिन्तामणि' (भाग–1) प्रथम संस्करण (1945) इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग। पृष्ठ सं0–88*
5. *डॉ0 राम विलास शर्मा, 'प्रेमचन्द और उनका युग' पांचवा संस्करण (1989) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना। पृष्ठ सं0 – 62*
6. *डॉ0 राम विलास शर्मा, 'परम्परा का मूल्यांकन' प्रथम संस्करण (1981) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना, पृष्ठ सं0–57*